भवभूमि के नाटको में नारी विमर्श

*डॉ. भास्कर शर्मा

प्रस्तावना –

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''[1] न गृहं गृहमित्यादुर्गृहिणी गृहमुच्यते'', ''यो भर्तासा स्मृतांगना।''[2] इत्यादि सुभाषित वाक्य भारतीय समाज में नारी के प्रति केवल शाब्दिक सद्भावना का प्रदर्शन मात्र नहीं वरन् भारतीय गृहस्थ जीवन में पग–पग पर इसकी व्यावहारिक सार्थकता सिद्ध है। आर्यावर्त प्राचीनकाल से ही 'मातृ देवो भव' 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' इत्यादि सूक्तियों का समुद्घोषक रहा है। शास्त्रों में भी नारी शक्ति का महान गौरव दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और आदर्शभूत संस्कृति है। ऐसी संस्कृति विश्व में अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देती है। यहां नारी का महत्त्व अत्यधिक है। पिता की अपेक्षा माता गौरव सर्वत्र लिखित है, कहा है – ''पितुर्दश गुणा माता गौरवेणातिरिच्यते'' इत्यादि वचनों के अनुसार नारी का महत्त्व अनादिकाल से ही प्रतिष्ठित है। नारी अपनी सृजनशीलता और कलात्मक प्रवृत्तियों से नर की सृष्टि को पूर्णता प्रदान करती आ रही है। 'नारी' शब्द नृ अथवा नर शब्द से बना है नृ+अच्+ङीन = नारी। महाभाष्य में पतंजलि ने कहा है ''नृर्धम्यान्नरी'', 'नरस्यापि नारी' इति। स्त्री, रमणी, प्रमदा, तरूणी, वामा, सुन्दरी, ललना, दारा, जननी, माता, दुहिता, बाला, सुता, कन्या, वधू, शक्ति इत्यादि नारी के पर्यायवाची हैं जो उनके वैशिष्ट्य को द्योतित करते हैं।

भारतीय ऋतम्भरा मनीषा परा शक्ति को द्वैत अथवा अद्वैत किसी भी रूप में मानें, किन्तु भौतिक सृष्टि के परिप्रेक्ष्य में इस द्वैत–अद्वैत शक्ति का समन्वय सापेक्ष है। नर–नारी एक पूर्ण के दो अंश हैं, अतः जब तक दोनों का समन्वय संयोग नहीं होता, तब तक सृष्टि का विस्तार असंभव है। इसमें नर की पूरयित्री नारी है जिसे जाया की संज्ञा दी गई है।

''यावन्न विन्दते जायां तावदर्धो भवेत् पुमान्।''[3]

नारी का माहात्म्य स्वयं उसके लिये प्रसंगानुकूल समय–समय पर दी गई संज्ञायें प्रतिपादित करती है। एक ओर जहां कान्ता, ललना, रमणी आदि नाम उसके रमणीय स्वरूप का बोध करवाते हैं, वहीं दूसरी ओर नारी, जाया, स्त्री आदि संज्ञाएं उसके गुण, धर्म, कर्म एवं महत्त्व को प्रदर्शित करती हैं। नारी के लिये स्त्री शब्द जितना अधिक व्यापक है उतना ही अधिक प्रचलित भी है। स्त्री शब्द ''स्त्यै'' धातु से बनता है ''स्त्यै'' धातु का अर्थ लज्जा से सिकुड़ना है। स्त्री का स्त्रीत्व उसके लज्जाशील होने में ही है। वे लजाती हैं, इसीलिये स्त्री है। स्त्रियों का पूजन देवताओं के समाराधन का मुख्यसाधन है। नारी भारतीय संस्कृति में अतीव उन्नत, गौरव की अधिकारिणी से ही है। स्त्रीत्व के नाते उसमें स्वभाववशात् अनेक प्रकार की दुर्बलताएं स्वतः विद्यमान रहती है। इसीलिये तो भारतीय समाजशास्त्रियों ने ''न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'' का शंखनाद किया है। यह कथन स्त्री समाज की निन्दा या अपमान का सूचक नहीं, प्रत्युत वस्तुस्थिति का द्योतक है। वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारत वर्ष में समाज में नारियों को बहुत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। प्राचीन समय में स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा की सुन्दर व्यवस्था थी तथा सामाजिक कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। वे अध्ययन–अध्यापन के अतिरिक्त युद्धों तक में जाती थी और अपनी वीरता की अमिट छाप छोड़ती थी। नारी को ब्रह्मा व सरस्वती कहा है।

भारतीय नारी कन्या व पत्नी के रूप में –

नारी त्याग और तपस्या की जाज्वल्यमान विभूति है। इन्हीं दोनों तत्वों के समन्वय से ही हमारी आर्या नारी का स्वरूप संगठित हुआ है। नारी जीवन का मूल मंत्र ''त्याग'' है और उसे सुदृढ़ता का आधार ''तपस्या'' ने दिया है। कन्या रूप, भार्या रूप तथा मातृ रूप ये त्रिविध रूप नारी के दृष्टिगत होते हैं। कौमार काल नारी जीवन का साधनावस्था है तथा उत्तर काल उस जीवन की सिद्धावस्था है। कन्या रूप में नारी का चित्रण हमें सुप्रसिद्ध कवि कालिदास की रचनाओं में प्राप्त होता है। कालिदास आर्य संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं, उन्होंने आर्य कन्या के आदर्श को ''पार्वती'' के रूप में अभिव्यक्त किया है। कालिदास ने ''कुमारसम्भवम्'' महाकाव्य में 'तपस्या' के महत्व को कड़े ही भव्य शब्दों में प्रकट किया है। कालिदास का कथन है –

इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतमं समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः

अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्चतादृशः।।[4]

नारी का गार्हस्थ्य जीवन –

भारतीय संस्कृति में नारी दो कुलों की मर्यादा की रक्षा करती है। एक घर में नारी का पालन–पोषण होता है तथा दूसरे घर की वह गृहस्वामिनी बनती है। नारी का गार्हस्थ जीवन भगवत्प्राप्ति का एक सोपान मात्र है। भगवान् की प्राप्ति अनुराग से सुलभ है, भक्ति ही स प्रियतम के पाने के लिये एक सुगमाराजमार्ग है। गार्हस्थ जीवन प्रेम में, सुख, दुःख में, अद्वैत अर्थात् एकाकार तथा समस्त अवस्थाओं में अनुकूल रहना नारी के द्वारा ही संभव है।

नारी की विविध रूपों में वन्दना की गई है –

''नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्।।

मानव जगत् का प्रायः आधा भाग नारी जाति का है। नारी माता के तौर से संतान को उत्पन्न करती है, उसका पालन पोषण करती है तथा उसके प्रति जीवन भर अपार एवं निःस्वार्थ प्रेम धारण करती है। गृहिणी के रूप से नारी पुरुष की सखी है, मंत्री है और उसके घर की व्यवस्था करती है तथा धर्म का साधन करती है। वह प्रेम, दया, त्याग, परिश्रम की प्रतिमा है।

नारी को भारतीय संस्कृति में जननी के रूप में अधिक महिमाशाली कहा गया है।

प्रतिदिन मनुष्य अपने पापों के विनाश के लिये पंच नारियों का स्मरण करते हैं।

''अहिल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।

पंचकम् नाम स्मरेत् नित्यम् महापातक नाशनम्।।''

भगवान शिव भी बिना नारी के अपने स्वरूप से आधे ही रह जाते हैं और पूरे रूप से ''अर्धनारीश्वर'' कहलाते हैं। नारी सदा से ही गौरवान्वित, सम्माननीय, पूजनीय, आदरणीय है और जन्मजन्मान्तर काल तक रहेगी।

सामान्य रूप में संस्कृत के नाटकों में शाही घरानों या ऊँच सामन्त कुलों की नारियों का ही चित्रण हुआ है।

परिणामस्वरूप निम्न मध्यम वर्ग अथवा निचले तबके की नारियों के विषय में इन नाटकों से अधिक सूचनाएं प्राप्त नहीं हो सकती। भवभूति के नाम से जो तीन नाटक मिलते हैं, उनमें भी मुख्य रूप से उच्च कुल की नारियों तथा उनके दाम्पत्य प्रेम का ही चित्रण हुआ है। भवभूति ने अपने नाटकों में नारियों के जो चरित्र प्रस्तुत किए हैं, उससे यह लगता है कि ये अपनी कृतियों के द्वारा साहित्य के यथार्थ लक्ष्य को पूरा करने के लिए दर्शकों को आनंद और शिक्षा दोनों ही देना चाहते थे। जो कुछ उन्होंने स्वयं अनुभव किया, वे उसको अपने दर्शकों की प्रतिक्रिया की चिंता किए बिना प्रस्तुत करना चाहते थे। साथ ही वे अपने दर्शकों को यह भी बतलाना चाहते थे कि आदर्श का स्वरूप क्या होना चाहिए। 'महावीर चरित' में 'भवभमूति' का लक्ष्य राम की वीरता को चित्रित करना था। तत्कालीन समाज में प्रचलित पारम्परिक अवधारणा के इस क्षेत्र में नारियों का अत्यधिक महत्व नहीं था। संभवतः इसीलिए नाटककार ने राम के सामने नायिका सीता को इस नाटक में विशेष महत्व नहीं दिया। किन्तु वीरता के भवों से भरे होने पर भी इस नाटक में कुछ ऐसी नारी पात्र है जो किसी भी समाज के लिए गौरव का विषय हो सकती है। इसलिए वाल्मीकि की रामायण की सीता और महावी चरित की सीमा के बीच जो अन्तर पाया जाता है। उसे किसी दूसरे कारण के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। सबसे पहले यहां यह देखना आवश्यक है कि नारी पात्रों के विषय में भवभूति के नाटकों में एक ऐसी विशेषता मिलती है, जो संस्कृत के किसी भी दूसरे नाटक में नहीं मिलती है। इन नाटकों में नारी पात्रों के ऐसे दो वर्ग हैं जो एक दूसरे से पूरी तरह भिन्न है। इनमें से एक वर्ग की प्रतिनिधि नारियां आर्य–कुल की गृहिणियां है। जिसका प्रतिनिधित्व सीता, उर्मिला और राजमाताएं करती है।

दूसरे वर्ग की नारियां विन्ध्यांचल के उस पार दक्षिण की है जिनमें सूर्पणखा, त्रिजटा, मन्दोदरी, तृमणा इत्यादि प्रमुख है। पहले वर्ग की नारियां जहां मृदुल स्वभाव की विनम्र–समर्पण की भाव वाली तथा अपनी निजी वैयक्तिकता से रक्षित है। वहीं दूसरे वर्ग की दक्षिण के नारी पात्र राजनैतिक मामलों की गंभीर पकड़ सक्रिय मस्तिष्क और शक्ति जैसे दुर्लभ गुणों से अपनी विषिष्ट वैयक्तिकता की छाप छोड़ती दिखलाई गयी है।

यद्यपि महावी चरित के कथानक का स्रोत रामायण है। फिर भी भवभूति को स्वतंत्र प्रतिभा कथानक के साथ–साथ सीता उर्मिला और सूर्पनखा के मुख्य चरित्रों में भी परिवर्तन कर दिया है। 'रामायण' कालिदास के रघुवंश आदि में सीता को राम के बाएं भाग में दिखलाया गया है। किंतु रामायण के किसी भी पाठक के लिए महावीचरित में दिखलायी उस रोती बिलखती युवती को सीता के रूप में पहचानना कठिन है। जो अपने पति को युद्ध क्षेत्र में जाने से मना कर रही है। यहां सीता अपने कर्त्तव्यों के पालन करने में अपने पति को प्रोत्साहित करने की जगह बाधक बनी हुई सी प्रतीत होती है।

का गतिः। आर्यपुत्रा, न तावद्युत्माभिर्गन्तव्यं यावत्तातो नागच्छति।[1]

जब परशुराम राम को युद्ध के लिए चुनौती देते हैं तो सीता उन्हें आगे न बढ़ने हेतु हर संभव प्रयास करती है। हा धिक्। परागत एवं। आर्यपुत्र, परित्रयस्व साहसिक।[2] उसकी सखियाँ और दासियाँ उसे ऐसा करने हेतु प्रोत्साहित करती है। जब सीता देखती है राम उनके अनुरोध पर नहीं रूकेंगे तो उनकी बाँह पकड़कर उन्हें रोकने का भी प्रयास करती है।

इस प्रकार का व्यवहार मध्यकाल की किसी सामान्य असंस्कृत युवती के लिए योग्य हो सकता था किन्तु राजा जनक जैसे प्रसिद्ध राजा की पुत्री के लिए नहीं। महावीरचरित में सीता को रंगमंच पर बहुत कम दिखलाया गया है। जब राम और परशुाम के बीच युद्ध होता है तो उन्हें तथा उर्मिला को शीघ्रता से अन्तःपुर पहुंचा दिया गया है। इससे यह व्यक्त होता है कि उस समय समाज में पुरुष अपनी किसी भी गंभीर मामलों को निपटाते समय स्त्री को बाधा समझते थे और ऐसे अवसरों पर उन्हें सुरक्षित स्थानों पर अन्तःपुर आदि में रखना ही उचित मानते थे। उन्हें लिपटी हुई ऐसी लतायें माना जाता था जो प्रेम करने और पालन करने योग्य मानी जाती थी। किन्तु विपत्ति के

अवसरों पर उन्हें अनन्त कष्टों औरर चिताओं का स्रोत समझा जाता था।

'महावीरचरित' की आर्य नारियों के चरित्रों से तत्कालीन आर्यों के दाम्पत्य संबंधों में पत्नी की स्थिति का यह संकेत महत्वपूर्ण है। किन्तु भवभूति के नाटकों की दक्षिणापंथ की नारियां उत्तरापथ की नारियों से सर्वथा विपरीत जीवनयापन करने वाली दिखलायी गयी है। वे कहीं भी विचरण करने को स्वतंत्र है, सुरक्षित है तथा उनकी पहुंच राजनैतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में भी है। इस वर्ग की सबसे प्रमुख नारी चरित्र सूर्पनखा है। रामायण में उत्तरापथ की प्रमुख नारी चरित से वह सर्वथा विपरीत है। ऐसा लगता है कि रावण की सभा में उसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। लंका के शक्तिशाली शासक का चाचा और चतुर मंत्री माल्यवान तक सूर्पनखा को अपने विश्वास में लेना आवश्यक समझते हैं। जब वह माल्यवान के सामने जाती है तो माल्यवान आसन देकर उसका स्वागत करता है।

ब्राह्मणातिक्रम त्यागो भवतामेव यूतेथ।

जमदग्यच वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते।।[3]

यद्यपि सूर्पनखा राजा की भगिनी है और मंत्री की भतीजी फिर भी उत्तर की अपनी बहनों की भांति वह अपने को अन्तःपुर के अन्दर बंद नहीं रखती अपितु आवश्यक राज्य कार्यों को लेकर स्वयं शत्रु के शिविर तक चली जाती है।

राजा और मंत्री उससे राज्य की महत्वपूर्ण नीतियों के संबंध में परामर्श भी लेते हैं। रामायण में रावण की भगिनी को विलासिनी और निर्लज्ज नारी के रूप में चित्रित किया गया है। जो राम की सुन्दरता से आकृष्ट होकर उचित या अनुचित किसी भी उपाय से अपने लिए राम को प्राप्त करना चाहती है। परन्तु भवभूति की सूर्पनखा रामायण की सूर्पनखा से एकदम भिन्न है। वह लंका के महामंत्री की मार्गदर्शिका है और शत्रु के शिविर में अव्यवस्था करने हेतु उसे भेजा गया है। निर्भय होकर वह युद्ध स्थलों में भी जाती है और किसी प्रकार की भीषण स्थिति उसे भयभीत नहीं करती। सम्भवतः भवभूति ने अनार्य संस्कृति की नारियों की स्थिति का चित्रण आर्य नारियों के चरित्रों की दुर्बलताओं को व्यक्त कने के लिए किया है किन्तु जब उत्तरापथ के दर्शकों ने इस प्रकार चरित्रों की सृष्टि को प्रोत्साहन नहीं दिया तो संभवतः उन्होंने अपने नाटक के लिए एक ऐसे कथानक को चुना जिसमें ऊंचे मध्यमवर्ग की नारी का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं था। भवभूति ने अपने दूसरे नाटक 'मालतीमाधव' की रचना संभवतः इस विचार से की कि यदि लोग उत्तर भारत की पतिपरायणा एवं आत्मसमर्पण वाली व्यक्तित्वहीन नारियों के चत्रि को ही देखना पसंद करते हैं तो क्यों न वे सामान्य प्रेम व्यापार में व्यस्त ऐसे ही चरित्रों की सृष्टि करे।

'मालतीमाधव' की नायिका भूरिवसु नामक ब्राह्मण मंत्री की छोटी पुत्री ही नाटक का उद्देश्य उन्मुक्त प्रेम का चित्रण है।

मनोरोगस्तीव्रं विशमिव विसर्पत्याविरतं

प्रमाथी निर्धूमा ज्वलति विघुतः पावक इव।

हिनंस्ति प्रत्यड़ ज्व इन गरीयानित इतो

न मा त्रातं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती।।[4]

मुख्य कथानक मालती और माधव के बीच का पास्परिक प्रेम है जिसकी परिणति दोनों के विवाह–बन्धन में बंधाने के रूप में होती है। उपकथानक के रूप में मकरन्द औ मदयन्तिका के बीच का प्रेम सम्बन्ध चित्रित किया गया है।

नाटक में नारी पात्रों की भरमार है जो सभी सामान्य व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती है।

"प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामाः शेवधिजीतितं वा।
स्वत्रीणां भर्त्ता, धार्मदाराश्च पुसामित्यन्योन्यं वत्सयोज्ञतिमस्तु।।[5]

अधिकतर नारी पात्रें का अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। नाटक की मुख्य नारी पात्र मालती औरर मदयन्तिका है जो विवाह योग्य आयु को प्राप्त है। ये दोनों तत्कालीन आर्य लोगों के समाज के सामन्ती वर्ग के कुलों की युवतियों का प्रतिनिधित्व करती है। मालती को ऐसी आज्ञाकारिणी पुत्री के रूप में भवभूति ने चित्रित किया है जो अपने माता–पिता के विरूद्ध जाने की बात सोच तक नहीं सकती। मालती और मदयन्तिका दोनों ही अपने प्रेमियों से सीधे बात नहीं करती है। अपितु अपनी सखियों के माध्यम से ही उन्हीं बातें होती है। भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में एक प्रशंसनीय तथ्य को व्यक्त किया है और यह आदर्श दाम्पत्य–प्रेम।

जहां तक नारियों की स्थिति का सम्बन्ध है, भवभूति ने अपने इन दोनों नाटकों में अपने समय के समाज में नारी की वास्तविक दशा का जो चित्रण किया है वह बहुत उत्साहजनक नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए मालती मदयन्तिका सीता और उर्मिला सभी रघुकुल की नारियां हैं किन्तु शिक्षा आदि के सम्बन्ध में वे समाज के दूसरे वर्गों के समान नारियों से विशिष्ट प्रतीत नहीं होती, विदेह के वीर–कुल में उत्पन्न होकर भी सीता और उर्मिला युद्ध के नाम से कांपने लगती है। नाटक में सांकेतिक दूसरी विशिष्टता, यह है कि समाज में वृद्धों तथा ब्राह्मणों का निरंकुश शासन प्रचलित था। परिवार की स्त्रियां परिवार के बूढ़ों के निर्णयों को सिर झुकाकर स्वीकार करती थी। विवाह अभिभावक के द्वारा तय किया जाता था और इस सम्बन्ध में लड़कियों की कोई भी आवाज नहीं होती थी। 'मालतीमाधव' के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उस समय में नारियों को उच्च शिक्षा की सुविधाओं से वंचित नहीं रखा गया था। उदाहरण स्वरूप इस नाटक की कामन्दकी, सौदामिनी और अवलौकिता तथा उत्तर रामचरित की अत्रेयी उच्च शिक्षा प्राप्त सम्पन्न है। उस समय नारियों का उच्च शिक्षा पाने की तथा इसके लिए आचार्य के घरर जाने की स्वतंत्रता थी। किन्तु यह स्वतंत्रता ब्रह्मचर्य जीवन बिताने वाली नारियों को ही प्राप्त थी। उच्च कुल की नारियों को कम या अधिक गृहस्थ जीवन में बंधने के उपरान्त नारी का अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण का किसी तरह का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रह जाता था। भवभूति के नाटकों में विधवा विवाह और सतीप्रथा का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु वृद्धजनों के प्रति सम्मान में घूंघट डालने की प्रथा प्रचलित प्रतीत होती है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार भवभूति के नाटकों में जिस समाज का चित्रण हुआ है उसमें नारियों की स्थिति 'श्री हर्ष' और 'विशाखदत्त' के काल के समाज से अधिक अच्छी नहीं प्रतीत होती है। एक सच्चे कवि के रूप में भवभूति ने सभी चीजों को सही संदर्भ में देखा समझा और जब उन्होंने राष्ट्र के कोमल पुष्पों को मुरझाया हुआ पाया तो उनकी आत्मा पीड़ित हो गयी। भवभूति की आत्मा की पीड़ा ने सर्वथा अभिनय अनुभवों की अधिपत्यता तथा मनुष्य पर धर्म का अधिकार कवि भवभूति के हृदय को पीड़ित करने लगी और उनकी संवेदनात्मक प्रवृत्ति विद्रोह में उठ खड़ी हुई।

परन्तु समय ने उन्हें जीवन के अनेक अनुभव प्रदान किए। जिससे उनके अन्दर भारतीय नारीत्व के आदर्श की महानता का भाव जाग उठा, जो सीता के उच्च चरित्र के रूप में प्रतिबिम्बित हुआ। उन्हें इस बात का भी स्मरण हुआ कि इतनी महान नारी को भी समाज और अपने पति से तिरस्कार औ अपमान मिला। इन चरित्रों में उन्होंने किसी भी भारतीय पत्नी या पति के अविभाज्य–दाम्पत्य का आदर्श प्रस्तुत किया है।

*व्याख्याता
सामान्य संस्कृत,
राजकीय आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय
भरतपुर, (राज.)

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. महावीर चरित्रम्, अंक 2, पृष्ठ 63
2. महावीर चरित्रम्, अंक 2, पृष्ठ 67
3. महावीर चरित्रम्, अंक 2, श्लोक 10
4. मालती माधव, अंक 2, श्लोक संख्या 1
5. मालती माधव, अंक 2, श्लोक संख्या 86